Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. XII, Issue No. 23, October-2016, ISSN 2230-7540

हास्य-व्यंग्य काव्य में मानव जीवन का अजनबीपन अथवा अकेलापन

Mukesh Kumar Upadhyay[1]* Dr. Mahesh Chandra Choudhary[2]

[1]Research Scholar, Narayan College, Shikohabad, Firozabad

[2]President Hindi Department, Narayan College, Shikohabad, District-Firozabad

----------X----------

अकेलापन अथवा अजनबीपन एक जटिल अवधारणा के रूप में आधुनिक युग की ऐसी समस्या है जो अपनी गिरफ्त में मानव–जीवन के सभी पक्षों को समेट लेती है। हिन्दी साहित्य में आधुनिक भावबोध के नाम पर जो अलगाव, अकेलापन अथवा अजनबीपन आया है, वह निश्चित रूप से पश्चिम के अस्तित्ववादी चिन्तन से प्रभावित है। अकेलेपन की समस्या को लेकर अस्तित्वादी और मार्क्सवादी चिन्तन में काफी विरोध रहा है। अपने इसी विरोधी रूप में यह अवधारणा आज विश्व साहित्य की एक अबूझ समस्या बन चुकी है। लेकिन हिन्दी साहित्य में इस भावधारा को समझने का प्रयत्न बहुत कम किया गया है। यहां उसकी अस्तित्ववादी धारणा को ही (वह भी खण्डित रूप में) ग्रहण कर उछाला गया है।

हास्य–व्यंग्य काव्य में मानव जीवन और परिवेश को दृष्टिगत रखते हुए अजनबीपन अथवा अकेलापन के भिन्न–भिन्न रूप प्रकट होते हैं। मंचीय कवियों ने उन्हें बखूबी स्वर प्रदान किया है। **अनूप श्रीवास्तव** ने आज के श्रवणकुमारों द्वारा पूज्या मां के प्रति किये जा रहे अजनबी (अनपेक्षित) व्यवहार का एक बिम्ब इस प्रकार उभारा है :

''...श्रवणकुमार से मैंने कहा–

आपकी मातृभक्ति कमाल की है

लेकिन आपकी मां तो

आखिरी सांसें गिन रही है

अस्पताल में,

पहले जाकर उनका

हालचाल ले आइये

बाद में लौटकर

मां की मूर्ति की स्थापना

सम्पन्न कराइये

श्रवण कुमार ने निश्चिन्तता के साथ

जवाब दिया–

मुझे मालूम है

मेरी मां तो कुछ ही दिन जी पाएंगी।

लेकिन अगर उनकी मूर्ति

स्थापित हो गयी तो,

सदा के लिए अमर हो जाएंगी।।''

उपर्युक्त कविता में पुत्र द्वारा मां की मूर्ति स्थापित कराने का कार्य आदर्श मातृभक्ति की झलक प्रस्तुत करता प्रतीत होता है, परन्तु जब श्रोता या पाठक के सामने पुत्र द्वारा अस्पताल में आखिरी सांसें गिन रही मां को देखने की उपेक्षा की जाती है तो उस सुपुत्र प्रतीत होने वाली देह में कुपुत्र का भाव स्पष्ट हो जाता है। जहां सांस्कृतिक मूल्यों का पोषक श्रवणकुमार माता–पिता की सेवा में अपना तन, मन और धन न्योछावर करने वाला सुपुत्र वहीं आज की मूल्यहीन संस्कृति का वाहक श्रवणकुमार अपनी बनावटी शान की तो परवाह करता है किन्तु जीवन और मृत्यु के बीच संघर्ष कर रहे मां–बाप की देखभाल करने से भी परहेज करता नजर आता है, जो कि वर्तमानकालीन पुत्रों की **सांवेदनिक अजनबीपन** का रूपायन करता है।

दिनेश्ज्ञ रस्तोगी ने आधुनिका वधुओं में पाए जा रहे पारिवारिक मूल्यों के प्रति अजनबीपन को चित्रित किया है, एक बानगी देखें:

''एक गौ ब्राण्ड बहू ने अचानक,

स्वायत्तता से

अपना नाता जोड़ लिया था

सास को अकेला पाकर

www.ignited.in

उसका सिर फोड़ दिया था!''

उपर्युक्त पंक्तियों में वधू को 'गौ ब्राण्ड' कहने से ऐसा प्रतीत होता है मानों वह गाय की तरह विनम्र और परिवार के निमित्त अपनी सेवाओं का दोहन कराने वाली होगी, परन्तु उसमें अचानक 'स्वयायत्तता' जाग्रत होना और सास को अकेला पाकर उसका सिर फोड़ने वाला घृणित कार्य गौ–ब्राण्ड शब्द की कलई खोल देता है, अर्थात् कवि ने आधुनिक वधुओं को 'गौ ब्राण्ड' विशेषण से संबोधित कर उन पर व्यंग्य किया है। एक शिष्ट समाज में वधू शब्द एक सीधी–साधी, विनम्र, सेवाभावी और परिवार के लिए अपना जीवन लगा देने वाली छबि उभारता है जबकि उसी वधू के द्वारा मातृतुल्य आदरणीय सास का सिर फोड़ने वाला कार्य उसमें एक हिंसक, संवेदनहीन, उद्दण्ड और जंगली व्यवहार को दर्शाता है जो कि पारिवारिक मूल्यों के प्रति अजनबीपन का बोधक है।

यूनानी विचारक **अरस्तु** ने एक स्थान पर लिखा था–''जो व्यक्ति समाज में नहीं रहता अथवा जिसे समाज की आवश्यकता नहीं, वह कोई देवता अथवा पशु ही हो सकता है।'' कहने का तात्पर्य यह एक सामान्य जीवन जीने वाला व्यक्ति अकेला नहीं रह सकता, और आवश्यकता या विवशता के कारण कोई मानव अकेलापन का शिकार होता है तो वह सामान्य मानव जीवन की धारा से पृथक् होने या कटने का सूचक है। जिस धारा का नदी की मुख्य धारा से अलगाव हो जाता है और आगे चलकर कोई सम्पर्क नहीं होता वह धारा अपना अस्तित्व खोने लगती है। इसी प्रकार जो व्यक्ति समाज में प्रेम एवं आदर से परिपूर्ण अपनत्व की धारा से विलग हो जाता है अथवा तिरस्कृत कर दिया जाता है वह अकेलापन का शिकार होकर दिनोंदिन क्षीणता और कृशता का शिकार होकर समय से पूर्व ही उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। ऐसी स्थिति एक संवेदनशील एवं शिष्ट समाज के लिए घातक कही जा सकती है।

स्वतन्त्रता से पूर्व काल में लोगों में जो अपनापन, प्रेम एवं सौहार्द्र का वातावरण था वर्तमान में उसका दिनोंदिन अभाव दिखाई देने लगा है। आज व्यक्ति एक मशीन की तरह नियमित होता जा रहा है जिसमें संवेदना का अभाव सुनिश्चित है। अकेलेपन जैसी मानवीय विसंगति को समकालीन मंचीय हास्य–व्यंग्य कवियों ने अपने शब्दों में बांधने का प्रकार्य निष्पादित किया है। **उमे□ा कुमार सिंह चौहान** की एक कविता का अंश विचारणीय है :

''जड़ों की जगमग खड़ाऊं पहने,

वह सामने खड़ा था,

सिवान का प्रहरी,

जैसे मुक्तिबोध का ब्रह्मराक्षस,

एक सूखा हुआ लम्बा झरनाठ वृक्ष,

जिसके शीर्ष पर हिल रहे थे

तीन चार पत्ते,

कितना भव्य था,

एक सूखे वृक्ष की टहनी पर,

महज तीन चार पत्तों का हिलना,

उस विकट सुखाड़ में,

सृष्टि पर पहरा दे रहे थे,

तीन चार पत्ते।।'

उपर्युक्त पंक्तियों पर स्थूल दृष्टि से विचार किया जाय तो पूरी कविता– एक सूखे हुए पेड़ जिसकी टहनी पर तीन–चार पत्ते ही अवशिष्ट हैं– का वर्णन प्रतीत होता है। परन्तु सूक्ष्मतः देखा जाय तो ज्ञात होता है कि 'खड़ाऊं पहने', 'प्रहरी', 'ब्रह्मराक्षस' जैसा डरावना, 'शीर्ष पर तीन–चार पत्तों का हिलना', 'सूखा हुआ झरनाठ'– ये सभी विशेषताएं किसी वृक्ष की हो सकती हैं परन्तु वृक्ष का मानवीकरण एक घर से निकाले गये वृद्ध के रूप में किया जाय तो उक्त सारी विशेषताएं यथावत् घटित हो जाती हैं। इस आधार पर कवि का भाव यह है– एक वयोवृद्ध पैरों में खड़ाऊं पहने, जिसका शरीर लम्बा और सूखा हुआ है, देखने में एक ब्रह्मराक्षस जैसा प्रतीत होता है, अकेला खड़ा है।

उपर्युक्त कविता में उतारा गया बिम्ब किसी कल्पना से प्रसूत न होकर वर्तमान सामाजिक परिवेश की सच्चाई का प्रकटन है। आज ऐसे अनेक अभागे माता–पिता हैं जो निकृष्ट और संवेदनशून्य सन्तान द्वारा घर से निकाल बाहर किये जा रहे हैं, फलतः वे किसी तीर्थ में साधुवेश धारण करने, गलियों में भिक्षा मांगने, अथवा निर्जन स्थान पर जाकर 'सृष्टि के पहरेदार' की तरह देखे जा सकते हैं। सड़क के किनारे, रेलवे ट्रैक अथवा चीर–गृह में रखे शवों की 'शिनाख्त' के सन्दर्भ समाचार–पत्रों में नित्यप्रति देखे जा सकते हैं। उनमें एक बड़ा अंश इस प्रकार के अकेलेपन के शिकार, अशक्त वृद्धों का भी होना अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।

कहने का तात्पर्य यह कि समकालीन परिस्थितियों में मानव जीवन अजनबीपन के रोग से ग्रसित होता जा रहा है। यह अजनबीपन न केवल परिवार, एवं शिक्षा जगत में प्रत्युत् राजनीति जगत, तथा देवालयों तक में अपने पांव पसारने लगा है जिसका यथातथ्य ध्वनन समकालीन मंचीय हास्य–व्यंग्य कवियों ने अपने काव्य में किया है।

सन्दर्भः

अशोक चक्रधर के चुटकुले (बंटवारा)

पंकज प्रसून (कविता–धक्का), देखें–अट्टहास (संपादक–शिल्पा श्रीवास्तव) दिसम्बर, 2011

डॉ. नथमल झांवर (कविता–महंगाई), देखें–अट्टहास (संपादक–शिल्पा श्रीवास्तव) दिसम्बर, 2011

प्रकाश 'पपलू' (कविता–सेंसर), देखें–जय कुमार 'रुसवा' (संपादक) हंगामा

जय कुमार 'रुसवा' (संपादक), हंगामा, (ओमप्रकाश 'आदित्य' की कविता–अतिथि सेवा)

शैल चतुर्वेदी, बाजार का ये हाल है (गीत–देश का क्या होगा भगवान)

www.ignited.in

Corresponding Author

Mukesh Kumar Upadhyay*

Research Scholar, Narayan College, Shikohabad, Firozabad

E-Mail – sirsaganjht@gmail.com